9. डायरी : कमर सीधी, ऊपर चढ़ो!

2 फरवरी सन् 1984

पहाड़ पर चढ़ने का कैंप

नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ माउन्टेनियरिंग, उत्तरकाशी

पहाड़ पर चढ़ना सीखने के लिए हम सब इकट्ठे हुए थे, बड़ी उमंगों के साथ। कैंप में केंद्रीय विद्यालयों से आई करीब बीस टीचर थीं, जिनमें से एक मैं थी। बाकी महिलाएँ बैंक और दूसरी संस्थाओं से थीं। आज कैंप का दूसरा दिन था। सुबह जैसे ही बिस्तर से नीचे पैर रखे तो दर्द से मेरी चीख निकल गई। एक ही दिन में पहाड़ी, सँकरे, ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर 26 किलोमीटर चलना, वह भी कमर पर सामान से भरा पिट्ठू बैग लेकर! बाप रे! कल का वह दिन। मैं आँखों में आँसू लिए, धीरे-धीरे चलकर एडवेंचर कोर्स के डायरेक्टर, ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह के कमरे में जा पहुँची। मैं मन ही मन सोच रही थी कि मुझे उनसे क्या-क्या कहना है, जिससे ट्रैकिंग पर न जाना पड़े। तभी पीछे से उनकी भारी-सी आवाज़ सुनाई पड़ी। "मैडम, नाश्ते के समय आप यहाँ क्या कर रही हैं? हरी अप! वरना भूखे ही ट्रैकिंग पर जाना होगा।"

"सर, सर ऽऽऽऽ।" मेरे आगे के शब्द मेरे मुँह में ही रह गए।

"पैरों में छाले पड़े हैं, चल नहीं सकती। यही कहना चाहती हैं न आप!"

"जी, सर"

"यह कोई नई बात नहीं है। जल्दी तैयार हो जाओ!"

मैं मुँह लटकाए चल दी तैयार होने के लिए। अभी मुड़ी ही थी कि फिर उनकी आवाज़ सुनाई दी

"सुनिए मैडम। आप ग्रुप नंबर सात की लीडर रहेंगी। किसी भी सदस्य को पहाड़ पर चढ़ने में परेशानी होने पर आपको उनकी मदद करनी होगी। पहाड़ों पर लीडर की क्या-क्या ज़िम्मेदारियाँ होती हैं, यह सबको बताया जा चुका है।"

बताओ

- क्या तुमने कभी पहाड़ देखे हैं? पहाड़ों पर चढ़े हो? कब और कहाँ?
- तुम एक ही बार में पैदल कितनी दूर तक चले हो? कितना चल सकते हो?

कल्पना करो

- पहाड़ों पर चढ़ने के रास्ते कैसे-कैसे होते होंगे, चित्र बनाओ।

एक बड़ी ज़िम्मेदारी

ग्रुप लीडर को जो बातें बताई गई थीं–

– बाकी लोगों का सामान उठाने में मदद करना।

– पूरे ग्रुप के आगे बढ़ जाने पर ही आगे बढ़ना।

– जो चल न पाए उसे हाथ पकड़कर चढ़ाना।

– रुकने के लिए जगह ढूँढना।

– बीमार पड़ने पर उसका ध्यान रखना।

– सब के खाने-पीने का इंतज़ाम देखना।

और सबसे बड़ी बात तो यह कि ग्रुप के किसी भी सदस्य से गलती हो जाने पर हँसते हुए सज़ा भुगतने को तैयार रहना। मैं समझ गई कि यहाँ का अनुशासन अपने-आप में अलग ही है। मैं समझ नहीं पा रही थी कि यह सज़ा है या मज़ा!

ग्रुप नंबर सात

ग्रुप नंबर सात में असम, मणिपुर, मिज़ोरम, मेघालय और नागालैंड राज्यों की लड़कियों में मैं अकेली ही केंद्रीय विद्यालय की टीचर थी। इन सभी से मिलना मुझे अच्छा लगा। किसी भी लड़की को ठीक से हिंदी बोलनी नहीं आती थी। मुझे आज भी दुख है कि मैं

मिज़ोरम की खोनदोनबी से एक बार भी बात नहीं कर पाई। उसे केवल मिज़ो भाषा ही आती थी, लेकिन फिर भी हमारे दिल एक-दूसरे से जुड़े रहे।

बताओ

- ग्रुप लीडर की ज़िम्मेदारियों के बारे में तुम क्या सोचते हो?
- अगर तुम्हें ऐसे कैंप में लीडर चुना जाए तो तुम्हें कैसा लगेगा?
- तुम्हारी कक्षा में मॉनीटर की क्या-क्या ज़िम्मेदारियाँ होती हैं?
- क्या तुम मॉनीटर बनना पसंद करोगे? क्यों?

5 फरवरी सन् 1984

जब नदी पार की.....

रोज़ की तरह सभी को नाश्ते में सुबह विटामिन 'सी' और आयरन की गोलियों के साथ गरम-गरम चॉकलेट वाला दूध मिला। ठंड से बचाव और ज़्यादा शक्ति के लिए। सुबह सभी का मेडिकल चेकअप होता। पट्टियाँ बाँधते और दर्द की मरहम मलते हुए हम रोज़ एक-एक दिन गिनते। करीब 8 किलोमीटर की ट्रेकिंग (चढ़ने) के बाद हम नदी के पास थे।

नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक मोटा, मज़बूत रस्सा बँधा था। इसे दोनों किनारों पर बड़े-बड़े 'पिट-ऑन' (खूँटों) से मज़बूती से बाँधा था। मन में अजीब-सी बेचैनी थी। पता नहीं क्यों, मुझे बार-बार लग रहा था कि कहीं रस्सा खुल गया तो? ये हुक उखड़ गए तो? मैं मन ही मन नदी की चौड़ाई आँक रही थी!

हमारे प्रशिक्षक ने कमर पर रस्सी बाँधी, उसमें स्लिंग (एक तरह का हुक) डाला और उस स्लिंग को नदी पर बँधे मोटे रस्से में डाला। बर्फ़ीले पानी में छप-छप-छप करते हुए

वे नदी के पार थे। उस तेज़ बहाव वाले पानी में उतरने को कोई तैयार नहीं था। सभी एक-दूसरे को पहले जाने को कह रहे थे। मैं भी लाइन में सबसे पीछे सबकी नज़र से बचते हुए जा खड़ी हुई। तभी प्रशिक्षक हुक और रस्सी लेकर मेरे पास आ खड़े हुए। मैं आई हुई मुसीबत को समझ गई। बचाव का कोई रास्ता न था। मैं नदी में उतरने को तैयार तो हो गई पर साहस नहीं जुटा पा रही थी। सर मेरे मन की हालत को समझ रहे थे। वे ज़ोर से बोले, 'थ्री चीयर्स फॉर संगीता मैडम'। इसके साथ ही किसी ने हल्के से मुझे पानी में धकेल दिया!

लगा, पैर सुन्न हो गए। मैं काँपने लगी। किट-किट-किट मेरे दाँत बज रहे थे। मैं रस्सा पकड़कर पैर जमाते हुए चल रही थी। किनारे पर तो पानी कम था। पर धीरे-धीरे पानी मेरी गर्दन तक पहुँच गया। नदी के बीचोंबीच, ज़मीन पर मेरे पैर टिक नहीं रहे थे, फिसल रहे थे। डर, घबराहट और ठंड के मारे मेरे हाथ से रस्सा छूट गया। मैं ज़ोर-ज़ोर से मदद के लिए चिल्लाने लगी। लगा, अब तो बह जाऊँगी। पर नहीं, मैं तो हुक के सहारे रस्से से बँधी हुई पानी पर पड़ी थी। रस्सा पकड़ो! रस्सा पकड़ो! की आवाज़ें अब मुझे सुनाई दीं। फिर हिम्मत करके मैंने रस्सा पकड़कर आगे बढ़ना शुरू किया। धीरे-धीरे, हिम्मत बटोरती आखिरकार मैं किनारे पर पहुँच गई।

नदी से बाहर निकलते ही मुझे एक खास खुशी का एहसास हुआ। खुशी—एक जोखिम भरा काम कर पाने की। अब किनारे पर खड़ी मैं, बाकी लोगों को चिल्ला-चिल्लाकर रस्सा कसकर पकड़ने की सलाह दे रही थी। जोखिम से जूझने के बाद जो विश्वास और साहस मुझे मिला, यह उसी का परिणाम था।

कल्याणी रघुनाथन

पता करो और लिखो

- पहाड़ों पर चढ़ने के लिए किन-किन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है?
- रस्सी और हुक का इस्तेमाल किसी और चीज़ में होते देखा है? कहाँ?
- पहाड़ी नदी पार करने के लिए हम और किन-किन चीज़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं?
- पहाड़ों पर ज़्यादा शक्ति की ज़रूरत क्यों होती है?
- क्या तुमने कभी किसी से जोखिम भरे काम के बारे में सुना है? क्या?
- क्या तुमने कभी कोई हिम्मत भरा काम किया है? यदि हाँ, तो अपनी कक्षा में सुनाओ। उसे अपने शब्दों में लिखो भी।

रॉक क्लाइम्बिंग (चट्टानों पर चढ़ना)

10 फरवरी, सन् 1984

15 किलोमीटर चढ़कर हमें टेकला गाँव पहुँचना था। यह गाँव लगभग 1600 मीटर की ऊँचाई पर था। खाने का डिब्बा, पानी की बोतल, रस्सी, हुक, प्लास्टिक शीट, डायरी, टॉर्च, तौलिया, साबुन, विंडचीटर (जैकेट), सीटी, ग्लूकोज़, गुड़, चना और कुछ खाने-पीने का सामान पिट्ठू बैग में लिए हम टेकला में खड़े थे। सीढ़ीदार खेतों में मौसम के अनुसार फल और सब्ज़ियाँ उगी थीं। सामने की एक बड़ी, बिल्कुल सपाट, लगभग 90 मीटर ऊँची चट्टान के ऊपर कर्नल राम सिंह खूँटे गाड़कर रस्सों के साथ खड़े थे। हमें बताया गया था कि चट्टान पर पहले पैर और हाथ जमाने की मज़बूत जगह पहचान लें।

कल्याणी रघुनाथन

आज मेरा मन पीछे हटने को नहीं था। मैं लाइन में सबसे आगे खड़ी थी। तभी हमारे प्रशिक्षक ने कमर पर रस्सी बाँधी, स्लिंग डाला और नीचे लटकता मोटा रस्सा पकड़कर, चट्टान पर चढ़ना शुरू किया। मुझे लगा वे उस चट्टान पर दौड़ रहे थे। मैंने भी स्लिंग डालकर चट्टान पर पैर बढ़ाया। लेकिन पैर बढ़ाते ही मैं फिसली और उस रस्से से झूलने लगी।

“90 का कोण बनाते हुए चलो।” आवाज़ आई।

“कमर सीधी रखो, आगे मत झुको।”

मैं एक बार फिर बढ़ी। चट्टान को ज़मीन मानकर मैं उस पर सीधी चढ़ने लगी। अभी वापिस उतरना बाकी था, जिसे पर्वतारोहण की भाषा में ‘रैप्लिंग’ कहते हैं। एक बार फिर मैं बेझिझक हो, निडरता से चट्टान से नीचे उतरने को खड़ी थी।

बताओ

- क्या तुम कभी पेड़ पर चढ़े हो? कैसा लगा?
- पेड़ पर चढ़ते हुए तुम्हें डर लगा या नहीं? क्या कभी गिरे भी?
- क्या तुमने कभी किसी को छोटी दीवारों पर चढ़ते देखा है? दीवार पर चढ़ने और ऊँची चट्टान पर चढ़ने में तुम्हें क्या अंतर लगता है?

एक मज़ेदार घटना

14 फरवरी, सन् 1984

शाम हो चली थी। खोनदोनबी को भूख लगी थी और हमारा खाने का सामान भी खत्म था। मेरे देखते ही देखते वह कँटीली तारें पार करके एक बगीचे में घुस गई। वहाँ से वह दो बड़े-बड़े पहाड़ी खीरे तोड़ लाई। तभी पीछे से एक पहाड़ी महिला ने उसका बैग पकड़ लिया। अपनी भाषा में वह खोनदोनबी से कुछ कह रही थी। उसकी पहाड़ी भाषा हमारी समझ से बाहर थी। खोनदोनबी बीच-बीच में मिज़ो भाषा में कुछ जवाब देती जो हमें समझ न आता। मैं उन दोनों को हिंदी में कुछ समझाती। लेकिन किसी को भी

किसी की बात समझ नहीं आ रही थी। आखिर हावभाव से मैंने उस महिला को समझाया और गलती मानी।

इतनी देर में सारा ग्रुप बहुत आगे निकल चुका था। अँधेरा हो चुका था और मुझे लगा हम गलत रास्ते पर बढ़ रहे थे। हम बहुत घबरा गए। टॉर्च से भी कुछ नज़र नहीं आ रहा था। हमने घबराकर हाथ पकड़ लिए। ठंड में भी मेरे पसीने छूट रहे थे। मैंने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "कहाँ हो तुम सब?" पहाड़ों पर मेरी आवाज़ गूँजने लगी। हमने ज़ोर-ज़ोर से सीटियाँ बजानी शुरू की और टॉर्च से रोशनी की। तब तक शायद ग्रुप को पता चल चुका था। जवाबी सीटियाँ बजने लगीं। हम उस संकेत को समझ गए। टॉर्च जलाए हुए, हाथ पकड़े, पसीने से तर-बतर हम वहीं अपनी जगह खड़े हो गए। खोनदोनबी को लगा कि हमें कुछ-न-कुछ बोलते रहना चाहिए। उसने मिज़ो भाषा में ज़ोर-ज़ोर से कोई गीत गाना शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में हमें ग्रुप मिल गया। तब जाकर हमारी जान में जान आई।

बताओ

- क्या तुम्हारी कक्षा में कोई ऐसा बच्चा है, जिसे तुम्हारी भाषा समझ नहीं आती या जिसकी भाषा तुम समझ नहीं पाते? ऐसे में तुम लोग क्या करते हो?
- क्या कभी तुम भी रास्ता भूले हो? तब तुमने क्या किया?
- खोनदोनबी ने ऐसी स्थिति में ज़ोर-ज़ोर से गीत क्यों गाया होगा?
- क्या डर से उभरने के लिए तुमने किसी और को कुछ खास करते हुए देखा है? क्या और कब?

करके देखो

- बिना बात किए अपने दोस्त से किताब या कुछ चीज़ें माँगो। इसी तरह कक्षा में बिना बोले अपनी बात समझाने की कोशिश करो।

एक खास मुलाकात

15 फरवरी, सन् 1984

रात को खाने के बाद हमें एक खास मेहमान से मिलवाया गया। वे थीं–बछेन्द्री पाल। उन्हें माउंट एवरेस्ट पर चढ़ाई के लिए चुना गया था। वे ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह से आशीर्वाद लेने आई थीं। उस खुशी के माहौल में सभी गा–बजा रहे थे। बछेन्द्री भी एक मशहूर पहाड़ी गीत गाते हुए नाचने लगीं– *बेडु पाको बारा मासा, काफल पाको चैता मेरी छैला।* मैं सोच भी नहीं सकती थी कि यही बछेन्द्री एवरेस्ट पर चढ़ने वाली पहली भारतीय महिला बनने का इतिहास रचेंगी।

कैंप

18 फरवरी, सन् 1984

हम अब लगभग 2134 मीटर की ऊँचाई पर खड़े थे। हमें रात को यहीं रुकना था। हम अपना–अपना टेंट लगाने की कोशिश में लगे थे। टेंट लगाने के लिए और बिछाने के लिए हमारे पास प्लास्टिक की दो तह वाली शीट थी, जिसमें हवा रुकी रहती है और ठंड नहीं आती। हमने खूँटे गाड़े और टेंट बाँधने शुरू किए। पर यह क्या? एक तरफ़ से बाँधते तो दूसरी तरफ़ से उड़ जाता! बड़ी मुश्किल से टेंट लगे। फिर हमने टेंट के चारों तरफ़ नाली खोदी। अब हम सभी भूख से बेहाल थे। हमने पत्थरों से चूल्हा बनाया। लकड़ियाँ इकट्ठी करके चूल्हा जलाया और खाना पकाया। खाना खाकर छिलके और कूड़ा एक पैकेट में इकट्ठा किया और जगह साफ़ की।

सोने के लिए हम स्लीपिंग बैग में घुस गए। हमारे स्लीपिंग बैग की तहों में पंख भरे हुए थे, जिनसे गरमी रहती हैं। मैं सोच रही थी–क्या इसमें मैं सो पाऊँगी? लेकिन हम इतने थके हुए थे कि स्लीपिंग बैग में घुसते ही नींद आ गई। सुबह उठे

शिक्षक संकेत–बच्चों को प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे कक्षा के अन्य बच्चों के घरों पर बोली जाने वाली भाषाओं को जानें और सीखें। इससे अन्य भाषाओं के लिए उनका सम्मान बढ़ेगा।

तो बर्फ़ गिर रही थी। सफ़ेद-सफ़ेद रूई के कतरों की तरह थी बरफ़! वाह! देखते ही मज़ा आ गया। पेड़-पौधे, घास, पहाड़, सभी कुछ सफ़ेद दिख रहे थे। आज हमें बरफ़ पर और ऊपर लगभग 2700 मीटर की ऊँचाई पर चढ़ना था। ऊपर चढ़ने के लिए हमें छड़ियाँ दी गईं। हम छड़ी के सहारे पैर जमा-जमाकर बढ़ रहे थे। बार-बार पैर फिसल रहे थे। दोपहर होते-होते हम बरफ़ से ढँके पहाड़ों पर थे। वहाँ हमने स्नोमैन बनाया और बरफ़ के गोलों से भी खेले।

कैंप का आखिरी दिन

21 फरवरी, सन् 1984

'कैंप फायर' (आग जलाने) की तैयारियाँ चल रही थीं। सभी ग्रुप अपना-अपना प्रोग्राम तैयार करके आए थे। खाने के बाद आग के चारों तरफ़ नाच-गाना, चुटकुले, हँसी-मजाक में कब रात के बारह बज गए, पता ही नहीं चला। तभी ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह उठे और उन्होंने मुझे बुलाया। मैंने सोचा कि आज आखिरी दिन भी कोई गड़बड़ हो गई है। पर उन्होंने जब 'बेस्ट परफॉर्मेंस अवार्ड' के लिए मेरे नाम की घोषणा की तो मैं अवाक् उन्हें देखती रह गई। ब्रिगेडियर साहब का आशीर्वाद भरा हाथ मेरे सिर पर था और मेरी आँखों से खुशी के आँसू टपक रहे थे।

चर्चा करो

पहाड़ पर टेंट के चारों तरफ़ नाली क्यों खोदी गई होगी?

पर्वतारोहण की तरह और कौन-कौन से काम हैं जिन्हें 'एडवेंचर' कहा जाता है? क्यों?

कल्याणी रघुनाथन

शिक्षक संकेत—डायरी के ये पन्ने संगीता अरोड़ा के खुद के अपने अनुभव हैं। वे केंद्रीय विद्यालय, शालीमार बाग, दिल्ली में पढ़ाती हैं और इस पुस्तक की निर्माण समिति की सदस्य हैं।

कल्पना करो और लिखो

- तुम पहाड़ पर हो। तुम्हें वहाँ कैसा लग रहा है? क्या-क्या दिख रहा है? क्या-क्या करने को मन कर रहा है?

खेल-खेल में

पहाड़ी इलाके में रहने वाली 12 वर्ष की एक पहाड़ी लड़की स्कूल से पिकनिक के लिए गई। वहाँ अपनी सहेलियों के साथ वह खेल ही खेल में लगभग 4000 मीटर ऊँची पहाड़ की चोटी पर चढ़ गई। वह चढ़ तो गई लेकिन, अँधेरा हो जाने के कारण वापिस उतर नहीं पाई। वहाँ था केवल घुप्प अँधेरा, ठंड और डर। पास में कुछ नहीं और बितानी थी पूरी रात। हाँ, यह है गढ़वाल के नाकुरी गाँव में रहने वाली बछेन्द्री पाल के बचपन की एक घटना।

बड़े होकर नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ माउन्टेनियरिंग से उन्होंने पहाड़ पर चढ़ने की ट्रेनिंग ली और उन्हें गाइड करने वाले थे-ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह। वे महिलाओं को पहाड़ों पर चढ़ने की ट्रेनिंग देने लगीं। 1984 में बछेन्द्री को माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए चुना गया।

एक धमाका

18 लोगों की उस टीम में सात महिलाएँ थीं। चढ़ाई के दौरान 15 मई की रात को टीम जब लगभग 7300 मीटर की ऊँचाई पर पहुँची तो बेहद थकी हुई थी। सब लोग तंबू गाड़कर सो गए। करीब साढ़े बारह बजे रात को धड़-धड़-धड़ की आवाज़ के साथ हुआ एक ज़ोरदार धमाका। इससे पहले कि वे उठ पाते, टेंट उड़ गया और कोई भारी चीज़ उनसे ज़ोर से टकराई। बछेन्द्री तो मानो बर्फ़ की चादर में ही लिपट गई। पूरी टीम के लोगों को बहुत चोटें आईं। टीम के लोगों ने कुल्हाड़ी से खोद-खोद कर, उन पर से बर्फ़ हटाई और उन्हें बाहर निकाला। उनका सिर जख़्मी था। यह एक भंयकर बर्फ़ का तूफान था। टीम के और लोग नीचे बेस कैंप में लौट गए। लेकिन बछेन्द्री जैसे-तैसे फिर ऊपर की तरफ़ बढ़ी। बछेन्द्री ने 23 मई 1984 को दिन में एक बजकर सात मिनट पर 8900 मीटर ऊँची चोटी *माउंट एवरेस्ट* (नेपाली नाम सागरमथा) पर कदम रखा!

उनके साथ उनकी टीम का एक साथी भी था। चोटी पर दो लोगों के खड़े होने की जगह ही नहीं थी। पैर फिसलते ही हज़ारों फुट नीचे ही गिरकर रुकते। उन्होंने बर्फ़ खोदकर अपनी कुल्हाड़ी को हुक की तरह गाड़े और रस्से से अपने-आपको उस हुक से बाँधा। तब वे लोग वहाँ खड़े हो पाए। वे ठंड से काँप रही थीं। पर खुशी से झूम भी रही थीं। उन्होंने वहाँ माथा टेका, तिरंगा गाड़ा और कई फ़ोटो भी खींचे। करीब 43 मिनट वह दुनिया की सबसे ऊँची चोटी पर रहीं। इसके साथ ही बछेन्द्री पाल भारत की पहली और संसार की पाँचवीं ऐसी महिला बन गईं, जिन्होंने एवरेस्ट पर कदम रखा।

शिक्षक संकेत–शिक्षक बच्चों को पर्वतारोहण में इस्तेमाल की जाने वाली चीज़ें, जैसे-स्लिंग, पिट-ऑन, हंटर शूज़, स्लीपिंग बैग, इत्यादि के चित्र दिखाकर या असल में उपलब्ध करवाकर चर्चा करवा सकते हैं।

कल्याणी रघुनाथन

सोचो

- बछेन्द्री ने चोटी पर तिरंगा क्यों गाड़ा होगा?
- झंडा कब-कब फहराते हैं?
- क्या तुमने किसी और देश का झंडा देखा है? कहाँ?
- अब 6 या 8 बच्चों के समूहों में बँट जाओ। अपने-अपने समूह के लिए झंडे का डिज़ाइन बनाओ। झंडे का यह डिज़ाइन तुमने क्यों चुना?

हम क्या समझे

- लोग एडवेंचर के लिए क्यों जाते हैं?
- कोई दो उदाहरण लेकर समझाओ कि पहाड़ पर चढ़ना एक चुनौती भरा एडवेंचर क्यों हो सकता है। तुम पहाड़ पर चढ़ने जाते तो क्या तैयारी करते? अपने साथ क्या-क्या ले जाते? अपने शब्दों में लिखो।